



छत्तीसगढ़

(Chattisgarh)

मध्य भारत स्थित राज्य छत्तीसगढ़ का नाम इस पूरे क्षेत्र में मौजूद छत्तीस किलों या गढ़ों के आधार पर पड़ा है। दक्षिणी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ी बोलने वाले 16 जिलों को अलग करके इस राज्य का गठन झाड़खण्ड के साथ-साथ एक नवम्बर, 2000 को हुआ था। इन दोनों राज्यों के गठन के पीछे मुख्य रूप से इन इलाकों में आदिवासी समाज की बहुत बड़ी मौजूदगी थी। गठन के बाद से छत्तीसगढ़ की राजनीति मुख्य रूप से द्वि-दलीय (कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी) ही रही है। एक तरह से इस मामले में छत्तीसगढ़ ने पुराने राज्य मध्य प्रदेश की राजनीति का ही अनुसरण किया है। जब यह राज्य मध्य प्रदेश का भाग था, तो मध्य प्रदेश के पहले मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल इसी क्षेत्र के थे। बाद में, शुक्ल बंधुओं श्यामाचरण शुक्ल और विद्याचरण शुक्ल ने भी मध्य प्रदेश और केंद्र की राजनीति में अपनी गहरी पहचान बनायी। राज्य के गठन के बाद इन शुक्ल बंधुओं में से एक यानी विद्याचरण शुक्ल ने राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के रूप में राज्य की राजनीति में एक तीसरा मोर्चा बनाने की कोशिश की, लेकिन वे नाकाम रहे। पिछले एक दशक में छत्तीसगढ़ विभिन्न कम्पनियों के साथ दिये गये खनन और कारखाना लगाने के समझौतों और इसके विरोध में आदिवासियों के आंदोलन के कारण भी चर्चा में रहा है। छत्तीसगढ़ का आदिवासी क्षेत्र माओवादी हिंसा और उसके प्रतिकार के लिए भाजपा व कांग्रेस के मिले-जुले लेकिन अत्यंत विवादास्पद उद्यम सलवा जुड़ूम के लिए भी जाना जाता है। 2013

के मध्य में माओवादियों द्वारा एक घात लगा कर किये गये हमले में कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष नंद कुमार पटेल, सलवा जुड़ूम का नेतृत्व करने वाले पूर्व विधायक महेंद्र करमा और पार्टी के वरिष्ठ नेता विद्याचरण शुक्ल के मारे जाने के बाद यह पार्टी प्रदेश में नेतृत्व के संकट से जूझ रही है। अगर माओवाद और उसकी प्रतिक्रिया में शुरू किये गये सलवा जुड़ूम को अपवाद माना जाये, तो एक नये राज्य के रूप में संसदीय राजनीति के स्तर पर छत्तीसगढ़ का प्रदर्शन ठीक-ठाक समझा जा सकता है। यहाँ सरकारें स्थायी रही हैं और उन्होंने बहुत खराब प्रदर्शन नहीं किया है।

रायपुर राजधानी वाला छत्तीसगढ़ क्षेत्रफल (135,194 वर्ग किमी) के हिसाब से भारत का दसवाँ राज्य है। छत्तीसगढ़ के उत्तर-पश्चिम में मध्य प्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र, दक्षिण में आंध्र प्रदेश, पूर्व में ओड़ीशा, उत्तर-पूर्व में झारखण्ड और उत्तर प्रदेश है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी आबादी 2,55,40,961 और इस लिहाज से यह भारत का सत्रहवाँ राज्य है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व 188.9 वर्ग किलोमीटर और साक्षरता दर 64.7 प्रतिशत है। छत्तीसगढ़ में विधायिका एक सदनीय है। विधानसभा में कुल 91 सदस्य चुने जाते हैं। लोकसभा में इस राज्य से कुल 11 और राज्यसभा में 5 सदस्य चुने जाते हैं। पूर्वी हिंदी की एक बोली छत्तीसगढ़ी को हिंदी के साथ राज्य की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया है। इसी के साथ छत्तीसगढ़ के कई भागों में कई आदिवासी और द्रविड़ भाषा-परिवार की बोलियाँ या भाषाएँ भी इस्तेमाल की जाती हैं। इस राज्य के उत्तरी और दक्षिणी भाग पहाड़ी हैं, जबकि मध्य भाग मैदानी है। इसके कुल भौगोलिक क्षेत्र का 44 प्रतिशत हिस्सा जंगल है। छत्तीसगढ़ को मुख्य रूप से एक ग्रामीण राज्य कहा जा सकता है क्योंकि यहाँ की जनसंख्या का सिर्फ 20 प्रतिशत



छत्तीसगढ़ : एक नवम्बर, 2000 को गठित

भाग ही शहरों में रहता है। यहाँ कुल 34 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियाँ और 12 प्रतिशत अनुसूचित जातियाँ हैं। यहाँ के मैदानी इलाकों में तेली, सतनामी और कुर्मा जैसी जातियाँ जनसंख्या के लिहाज से प्रभुत्वशाली स्थिति में हैं। जंगली इलाकों में गोंड, हल्बा, कुमार, गुजिया और उरांव जैसी जनजातियों की जनसंख्या ज्यादा है।

अपने गठन के समय इस राज्य की विधानसभा को इस क्षेत्र से 1998 में मध्य प्रदेश विधानसभा में चुने गये सदस्य ही मिले। इसलिए यहाँ कांग्रेस को बहुमत मिला और उसने अजीत जोगी के नेतृत्व में अपनी सरकार बनायी। 2003 में हुए विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा और भाजपा को जबरदस्त जीत मिली। इन चुनावों में भाजपा को 50, कांग्रेस को 37 तथा बहुजन समाज पार्टी या बसपा को 2 सीटें मिलीं। भाजपा ने रमन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनायी। 2004 के संसदीय चुनावों में भी भाजपा को भारी जीत मिली। इसने कुल 11 सीटों में से 10 पर जीत हासिल की और कांग्रेस के खाते में मात्र एक सीट आयी।

2008 में राज्य में फिर से विधानसभा चुनाव हुए और इन चुनावों में भी भाजपा ने बहुमत हासिल किया। उसने अपने पुराने प्रदर्शन को दुहराते हुए कुल 50 सीटों पर जीत हासिल की, वही कांग्रेस को 38 सीटों पर जीत मिली। 2009 में हुए संसदीय चुनावों में भी भारतीय जनता पार्टी ने अपने पुराने प्रदर्शन को दुहराते हुए 10 लोकसभा सीटों पर जीत हासिल की, जबकि कांग्रेस को सिर्फ 1 सीट पर जीत मिली।

छत्तीसगढ़ में हुए पिछले दो विधानसभा चुनाव (2003 और 2008) तथा दो संसदीय चुनावों (2004 और 2009) से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यहाँ की राजनीति में भाजपा की स्थिति कांग्रेस की तुलना में काफी मजबूत हुई है। इसका एक बड़ा कारण भाजपा की राज्य सरकार का तुलनात्मक रूप से ठीक-ठाक प्रशासन रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा वनवासी कल्याण आश्रमों के माध्यम से किये गये कामों का फ़ायदा भी भाजपा को मिला है। इसके अलावा, कांग्रेस पार्टी के भीतर मौजूद ख़ेमेबाजी ने भी भाजपा की राह आसान कर दी है।

छत्तीसगढ़ में विभिन्न खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा हैं। राज्य सरकार ने इन संसाधनों के दोहन और उसके माध्यम से राज्य के विकास के लिए बहुत सारी राष्ट्रीय और बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों से समझौते किये। इन समझौतों के विरोध में छत्तीसगढ़ के कई इलाकों में जन-आंदोलन शुरू हुए। छत्तीसगढ़ के कई भागों में माओवादी आंदोलन ने भी जोर पकड़ा। खासतौर पर दाँतेवाड़ा जिला और उसके आस-पास के इलाक़ माओवादी आंदोलन का गढ़ बन गये। माओवादियों के दमन के लिए राज्य द्वारा की कार्यवाहियों और राज्य के प्रतिरोध के लिए माओवादियों की कार्यवाहियों ने हिंसा-प्रतिहिंसा के अंतहीन दौर को जन्म दिया। इसी दौरान एक अन्य परिघटना के रूप में सलवा जुड़ूम का भी उभार हुआ। 2005 में छत्तीसगढ़ के कांग्रेसी नेता महेंद्र करमा के नेतृत्व में दाँतेवाड़ा जिले इसकी शुरुआत हुई जिसे बाद में भाजपा सरकार ने भी पूरा समर्थन दिया। मुख्यमंत्री रमन सिंह ने इसे 'गाँधीवादी शांतिपूर्ण आंदोलन' की संज्ञा दी।

विरोधाभास यह था कि शुरुआत से ही आंदोलन के कार्यकर्ताओं के पास ढेर सारे हथियार थे। जुड़ूम के कार्यकर्ता माओवादी प्रभाव के गाँवों में जा कर वहाँ लोगों को गाँव ख़ाली करके शिविरों में जाने के लिए कहते थे। लोगों द्वारा मना करने पर उन्हें जान से मारे जाने, उनके घरों को जला देने, बलात्कार करने जैसे ख़तरों का सामना करना पड़ता था। मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की लगातार आलोचनाओं और चेतावनियों के बावजूद सलवा जुड़ूम चलता रहा। सरकार ने इससे जुड़े लोगों को हथियार देकर एसपीओ (या विशेष

पुलिस अफ़सर) बनाना भी शुरू कर दिया। एसपीओ के रूप में इन आदिवादी युवकों को 3000 हजार रुपये का मानदेय दिया जाता था। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे माओवादी विद्रोह के खिलाफ़ संघर्ष में सुरक्षा बलों की मदद करेंगे। इस तरह समाज के एक तबके के युवाओं को हथियार देकर दूसरे तबके के खिलाफ़ लड़ने के लिए गोलबंद किया गया। इस परिघटना ने राज्य के इस इलाक़े में हिंसा और मानवाधिकार-उल्लंघन की घटनाओं में काफ़ी बढ़ोतरी की। 5 जुलाई, 2011 को नंदिनी सुंदर और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य केस में अपना फ़ैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने सलवा जुड़ूम और एसपीओ की नियुक्ति को अवैध करार दिया। इसके बाद औपचारिक रूप से सलवा जुड़ूम का अंत घोषित कर दिया गया। लेकिन समझा जाता है कि इसके बावजूद छत्तीसगढ़ सरकार की तरफ़ से यह परिघटना अनौपचारिक और अघोषित रूप से जारी है।

विकास और आदिवासियों के जल-जंगल-ज़मीन का सवाल छत्तीसगढ़ में शिदत से उभर कर सामने आया है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि इस मुद्दे पर राज्य के सत्ताधारी दल और मुख्य विपक्षी दल के बीच अद्भुत सहमति बन गयी है। दोनों ही पूँजीपतियों के निवेश को राज्य के विकास का एकमात्र रास्ता मानते हैं। इसने न सिर्फ़ संसाधनों की लूट को बढ़ावा दिया है बल्कि इससे आदिवासियों की जीविका और जीवन-शैली ही ख़तरे में पड़ गयी है। फिर, छत्तीसगढ़ में संसदीय राजनीति करने वाले दलों (वामपंथी दलों के अलावा) ने हर तरह के विरोध को माओवाद की श्रेणी में डालकर दमन करने की नीति की हिमायत की है। इससे राज्य की स्थिति और पेचीदा हो गयी है। भविष्य में राज्य की राजनीति की दिशा सिर्फ़ इस बात पर निर्भर नहीं करती कि कांग्रेस भाजपा को चुनौती दे पाती या नहीं। दरअसल, राज्य की राजनीति की दिशा इस बात से तय होगी कि संसदीय राजनीति करने वाले आम आदिवासियों की आकांक्षाओं और जल, जंगल, ज़मीन से उनके जुड़ाव को मान्यता देने और उसके अनुरूप विकास का मॉडल बनाने के लिए तैयार होते हैं या नहीं।

देखें : असम, अरुणाचल प्रदेश, आदिवासी प्रश्न-1, 2 और 3, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, ओडीशा, कर्नाटक, केरल, जम्मू और कश्मीर, झाड़खण्ड, तमिलनाडु, त्रिपुरा, दिल्ली, नगालैण्ड, पश्चिम बंग, पंजाब, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मिज़ोरम, मेघालय, भारतीय संघवाद, बिहार, राजस्थान, राज्यों का पुनर्गठन-1, 2 और 3, राज्यों की राजनीति, संघवाद, हरियाणा।

संदर्भ

1. बाबा मायाराम (2009), 'छत्तीसगढ़ : अब भाजपा का गढ़', अरविंद मोहन (सम्पा.), *लोकतंत्र का नया लोक : चुनावी राजनीति में राज्यों का उभार*, भाग-2, वाणी प्रकाशन-लोकनीति

सीएसडीएस, नयी दिल्ली.

2. पी. छिब्र और नूरुद्दीन (2008), 'अनस्टेबल, पॉलिटिकल-फ़िस्कल स्पेस ऐंड इलेक्टोरल वोलैटलिटी इन द इण्डियन स्टेट्स', *कम्पैरेटिव पॉलिटिकल स्टडीज़*, खण्ड 41.
3. पीपुल्स यूनिन फ़ॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (2005), *व्हेन द स्टेट मेक्स वॉर ऑन पीपुल : वॉयलेशन ऑफ़ पीपुल्स राइट्स इयुरिंग सलवा जुड़ूम*, नयी दिल्ली.

— कमल नयन चौबे

छात्र आंदोलन

(Student Movement)

क्रांतियों, क्रांतिकारी आंदोलनों और तरह-तरह के रैडिकल परिवर्तनों में राजनीतिक रूप से सचेत छात्रों और उनके संगठनों ने बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सजग व प्रभावशाली भूमिका निभायी है। लेकिन एक सामाजिक आंदोलन के रूप में छात्र आंदोलन की उपस्थिति का विशेष महत्त्व है। इस रूप में छात्र आंदोलन को आधुनिक समाज की एक ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति की तरह देखा जा सकता है जिसमें विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के विद्यार्थी समूह परिवर्तन की धारा में अग्रगामी भूमिका निभाते हैं। ऐसी अनगिनत घटनाएँ हो चुकी हैं जब छात्र-ऊर्जा ने नैतिक रूप से साख गँवा चुकी हुकूमतों के खिलाफ़ प्रतिरोध की मुखर अभिव्यक्ति में निर्णायक हिस्सेदारी की। छात्र आंदोलन की ऐसी मिसालें युरोप, एशिया, अफ़्रीका तथा लातीनी अमेरिका के सर्वसत्तावादी देशों के साथ-साथ उदारतावादी उद्योगीकृत दुनिया में भी दिखायी पड़ती हैं, हालाँकि इसकी तीव्रता, तन्मयता व प्रभाव में क्षेत्र-क्षेत्र अंतर देखा जा सकता है।

अमेरिकी महाद्वीपों के मुल्कों में छात्र आंदोलनों ने सामाजिक आंदोलन को गति देने वाले उत्प्रेरक की भूमिका अदा की है। जिस समय सामाजिक आंदोलन इन देशों की हुकूमतों द्वारा बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता में नाकामी को चुनौती दे रहे थे, छात्र आंदोलनों ने अपनी ऊर्जा से राजनीतिक सक्रियता को एक नया आयाम दिया। अमेरिकी समाज-विज्ञान पहले छात्र-प्रतिरोध को मनोसामाजिक और घटाववादी नज़रिये से समझने की कोशिश करता था। लेकिन जल्दी ही इस दृष्टि की ख़ामियाँ साफ़ हो गयीं और छात्र-कार्रवायी के आईने में सामाजिक आंदोलन को पॉलिटिकल एक्शन कर सकने वाली राजनीतिक संरचना के रूप में देखने की शुरुआत हुई। युरोप में उत्तर-औद्योगिक समाज की

अवधारणा के इर्द-गिर्द नये सामाजिक आंदोलन की थीसिस सूत्रबद्ध की गयी जिसने साठ के दशक के उन छात्र-आंदोलनों को समझने में मदद की जिनके उभार ने पारम्परिक मार्क्सवादी समझ को चकरा दिया था।

साठ के दशक में विद्यार्थियों के उग्र विरोध पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। उस समय इसका संबंध वियतनाम में अमेरिका द्वारा किये गये फ्रौजी हस्तक्षेप से था। खास बात यह है कि साठ के दशक में ही अमेरिका में छात्र आंदोलन की परिघटना मुख्य रूप से अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिक अधिकारों और सोशलिस्ट स्टुडेंट्स लीग फॉर इंडस्ट्रियल डैमोक्रेसी (जो कालांतर में स्टुडेंट्स फॉर अ डैमोक्रेटिक सोसाइटी बन गयी) के रूप में उभरी थी। छात्रों के इस संगठन ने 1964 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में भाषण की स्वतंत्रता के मुद्दे पर रोष प्रकट किया था। इस घटना की अहमियत का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसने अमेरिका तथा बाहरी दुनिया के बुद्धिजीवियों के मध्य छात्र आंदोलन और राजनीतिक धुव्रीकरण के मुद्दे पर खासी रुचि पैदा की। वियतनाम युद्ध का प्रतिरोध करने के कारण यह आंदोलन 1970 के वसंत तक अपनी पहचान राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर स्थापित कर चुका था।

साठ के दशक में हुए छात्र आंदोलनों का व्यापक प्रभाव युरोपीय समाज पर भी देखा गया। इसका रैडिकल रूप मई, 1968 में देखने को मिला जब फ्रांस में विद्यार्थियों ने हुकूमत के उदारतावादी लोकतांत्रिक चरित्र में निहित उस राजनीतिक एजेंडे का विरोध किया जिसने आम लोगों के जीवन में ठहराव ला दिया था। इस आंदोलन के कारण फ्रांस का रोज़मर्रा का जन-जीवन अभूतपूर्व ढंग से प्रभावित हुआ। छात्र-ऊर्जा का राजनीतिक प्रभाव धीरे-धीरे विश्व के अन्य हिस्सों, मसलन ऑस्ट्रेलिया, एशिया तथा कम्युनिस्ट शासित पूर्वी युरोप के देशों में भी दिखा।

उल्लेखनीय है कि छात्र आंदोलन का उभार आधुनिक औद्योगिक समाज में उस वक़्त हुआ जब बहुत कम समय में उच्च शिक्षा में दाखिलों की संख्या तिगुनी-चौगुनी हो गयी। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों की संख्या इतनी ज्यादा हो गयी कि उनके द्वारा किये जाने वाले आंदोलन अपने परिमाणत्मक प्रभाव में एक नयी दावेदारी की अभिव्यक्ति करने लगे। उच्च शिक्षा में बढ़ते हुए दाखिलों के पीछे जनसंख्यामूलक दबाव प्रमुखता से काम कर रहे थे। विश्व-युद्ध के बाद आये 'बेबी बूम' के कारण चालीस से साठ के दशक में अमेरिका में जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गयी थी। उच्च शिक्षा में संख्या प्रसार के पीछे कुछ राजनीतिक और बौद्धिक कारण भी थे। मानव-पूँजी की आवश्यकता पर जोर देने वाले बुद्धिजीवियों का मानना था कि आर्थिक होड़ में बाजी मारने के लिए उच्च कार्यकुशलता से

सम्पन्न कर्मचारियों की संख्या बढ़ाना ज़रूरी है। दूसरी तरफ़ अमेरिकी समाज में अभिभावक भी अपनी संतान के लिए रोज़गार-सुलभता के नज़रिये से उच्च शिक्षा की तरफ़ झुक रहे थे। इस सबके साथ-साथ उनका यह भी मानना था कि अपने जीवन के सर्वोत्तम काल में युवाओं के लिए विश्वविद्यालय एक आदर्श ज्ञान का मंदिर है। दूसरी तरफ़ आर्थिक खुशहाली बढ़ने के कारण माता-पिता अपने वयस्क बच्चों को परिवार में आर्थिक योगदान से छूट देने में सक्षम होते जा रहे थे। एक युवक पहले के किसी भी समय के मुकाबले लम्बे अरसे तक छात्र बना रह सकता था। इन्हीं सब कारणों से विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती चली गयी। विश्वविद्यालयों के प्रबंधन पर दबाव बढ़ा। कई देशों में विश्वविद्यालय छात्र-संख्या में हुए इस अचानक प्रसार का सामना करने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी सुविधाएँ अपर्याप्त थीं। पाठ्यक्रम सुधारने में भी उन्हें देर लगी। इन कारणों से भी तनाव बढ़ा। विश्वविद्यालय प्रशासन और विद्यार्थी आमने-सामने आ गये। विद्यार्थियों का मानना था कि वे अब व्यस्क हो चुके हैं तथा अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हैं, जबकि प्रशासन को हमेशा इस बात का ग़रूर था कि विद्यार्थियों के वे ही स्थानीय अभिभावक हैं।

छात्र आंदोलनों ने जो माँगें रखीं उन्होंने बृहद राजनीतिक संदर्भ में धरने व विरोध प्रदर्शन का रूप अख़्तियार कर लिया। छात्रों की समस्याएँ नागरिक स्वतंत्रता के प्रश्न की तरह सूत्रीकृत होने लगीं। आंदोलन की तीव्रता इतनी अधिक थी इसके आगे विश्वविद्यालय प्रशासन खुद को असहाय महसूस करने लगा। फ्रांस में तो हालत यह थी कि विश्वविद्यालय के रेक्टर को विद्यार्थियों के डार्मिटरी से जुड़े कानून में फ़ेरबदल करने तक का अधिकार नहीं था। छात्र आंदोलनों के उभार व विकास ने राजनीतिक फलक पर भी शक्तिशाली उपस्थिति दर्ज की। विपक्षी राजनीतिक दलों ने भी सरकारी नीतियों के खिलाफ़ उनकी ऊर्जा का लाभ उठाने की योजना बनायी। पश्चिमी जर्मनी इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जहाँ सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी से निष्कासित समाजवादी विद्यार्थियों ने एक व्यापक गठबंधन बना कर संसद पर प्रभुत्व कर लिया। हायडलबर्ग, म्यूनिख अथवा रोम में छात्र आंदोलन की शुरुआत विश्वविद्यालय परिसर से बाहर हुई, बर्लिन, फ्रैंकफ़र्ट, टोरंटो में वामपंथी दलों की कमजोरी ने भी छात्र आंदोलन के उभार में भूमिका निभायी।

शुरुआत में छात्र-आंदोलनों को समाचार माध्यमों में काफ़ी जगह मिली। खास तौर पर वियतनाम युद्ध के समय अमेरिकी हस्तक्षेप के खिलाफ़ जो उग्र छात्र आंदोलन भड़का उसे मास मीडिया ने हाथों-हाथ लिया। लेकिन कालांतर में इटली, जर्मनी तथा अमेरिका में छात्र आंदोलन ने जब हिंसक रुझान दिखाये और विद्यार्थियों के कुछ छोटे-छोटे समूह आतंकवाद में शामिल होने लगे तो मीडिया ने इसे महत्त्व देना



1968 में फ्रांस का रैडिकल छात्र आंदोलन

कम कर दिया। दूसरी तरफ अपनी उपेक्षा से आहत और काफ़ी रैडिकल हो चुके कुछ छात्र-समूहों ने मार्क्सवादी शैली में सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारीकरण की विफल कोशिशें भी कीं। इस घटनाक्रम ने छात्र आंदोलनों के सीमित चरित्र को भी रेखांकित किया।

जहाँ तक एशियाई समाजों में छात्र आंदोलन की भूमिका का सवाल है, इसकी प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट प्रतीत होती हैं। थाइलैण्ड, दक्षिण कोरिया, ताइवान तथा इंडोनेशिया में सर्वसत्तावादी शासन प्रणाली ने नागरिक अधिकारों तथा लोकतांत्रिक अधिकारों को दबाते हुए छात्र आंदोलनों को पनपने का मौक़ा ही नहीं दिया। बर्मा में तो सरकार ने आक्रामक रवैया अपनाते हुए छात्र आंदोलनों को दबा दिया। इस कड़ी में चीन का उदाहरण भी महत्वपूर्ण है जहाँ 1989 में पेइचिंग के त्यान-अन-मान चौराहे पर हो रहे आंदोलन को कुचल डाला गया। भारत में छात्र आंदोलन की व्यवस्थित बानगी सत्तर के दशक में जयप्रकाश नारायण आंदोलन के रूप में देखी जा सकती है जो मुख्यतः भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन था।

लातीनी अमेरिका के देश चिली में मई, 2011 के दौरान दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ़ आम विद्यार्थियों का गुस्सा उबल पड़ा। उन्होंने शिक्षा-व्यवस्था की गुणवत्ता का सवाल उठाया और पूरी अर्थव्यवस्था में ही रद्दोबदल करने की ज़िद की। 14-19 जुलाई के बीच विद्यार्थियों ने 148 स्कूलों पर क़ब्ज़ा कर लिया।... कुछ विश्वविद्यालयों की गतिविधियाँ तो पूरी तरह से ठप्प हो गयीं। नतीजतन सरकार

ने इक्कीस सूत्री प्रस्ताव पेश किया जिसमें विद्यार्थियों की कई माँगों को मान लिया गया। इनमें अच्छी शिक्षा सुलभ कराने के लिए संवैधानिक गारंटी, गर्वनेंस में विद्यार्थियों की भागीदारी, विश्वविद्यालय स्कॉलरशिप में बढ़ोतरी जैसी माँगें शामिल थीं। इसके बावजूद लगभग एक लाख विद्यार्थियों ने सेंटियागो की सड़कों पर आकर सरकारी प्रस्ताव का विरोध किया और कॉरपोरेट घरानों के दखलअंदाजी का विरोध करते हुए मुक्त, उच्च गुणवत्ता वाली लोक-शिक्षा की माँग की।

छात्र आंदोलनों के उभार के पीछे एक अहम कारण राजनीतिक विपक्ष और वामपंथी आंदोलन की कमजोरी का रहा है। युरोप में भी छात्रों के प्रतिरोध ने राजनीतिक प्रतिपक्ष द्वारा प्रदर्शित की जा रही कमजोरी की भरपाई ही की थी। दूसरे, विकसित उदारतावादी लोकतांत्रिक देशों में या भारत जैसे एशियायी लोकतांत्रिक छात्रों को थोड़े-बहुत दमन से ज़्यादा कुछ नहीं झेलना पड़ा। उन्हें प्रभु वर्ग के एक हिस्से ने समर्थन दिया जिसके कारण वे कुछ दिनों तक टिके रह सके। लेकिन इसके उलट पूर्वी युरोपीय देशों, चीन जैसे कम्युनिस्ट शासन वाले देशों में या अन्य सर्वसत्तावादी हुकूमतों में छात्र आंदोलन सरकारी दमन के मुकाबले टिकने में असमर्थ साबित हुए।

देखें : असम आंदोलन, जय प्रकाश नारायण, ज्यॉ-पाल सार्त्र, भारतीय सामाजिक आंदोलन, समाजवादी वसंत-1, 2, 3, 4 और 5, सामाजिक आंदोलन।

संदर्भ

1. एम.ई. बोरेन (2001), *स्टुडेंट रज़िस्टेंस : अ हिस्ट्री ऑफ़ द अनरूली सब्जेक्ट*, रॉटलेज, न्यूयॉर्क.
2. डी.ई. बर्ग (1998), *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ स्टुडेंट ऐंड यूथ मूवमेंट्स*, फ़ैक्ट्स ऑन फ़ाइल, न्यूयॉर्क.
3. एल. प्रयूर (1969), *द कॉम्प्लेक्ट ऑफ़ जेनरेशंस : द करेक्टर ऐंड सिग्नीफ़िकेंस ऑफ़ स्टुडेंट मूवमेंट्स*, बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क.
4. सी. रूट्स (1980), *'स्टुडेंट रैडिकलिज़म : पॉलिटिक्स ऑफ़ मॉरल प्रोटेस्ट ऐंड लेजिटिमेशन प्रॉब्लम्स ऑफ़ द मॉडर्न कैपिटलिस्ट स्टेट्स'*, थियरी ऐंड सोसाइटी, खण्ड 9, अंक 3.

— पंकज कुमार झा